"हिंदी साहित्य में आदिवासी-विमर्श"

प्रा. अपर्णा संभाजी कांबळे
सहायक प्राध्यापिका
डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी
मो. नं. 7709683122
ई-मेल – aparnakamble282@gmail.com

शोध सार:

'गायब होता देश' में भी आदिवासियों के संघर्ष को एक व्यापक संघर्ष के हिस्से के रुप में देखा गया है। चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि "इसी वजह से उपन्यास आदिवासी जन-जीवन के बारे में कुछ भी ऐसा नहीं बता पाता जो खनन, भूमि-अधिग्रहण या फिर मानवाधिकारों के मुद्दे पर सक्रिय स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रकाशनों अथवा आंदोलनधर्मी अखबारों/पत्रिकाओं में ना मिलता हो।" चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि भले ही रणेंद्र आदिवासी समाज से परिचय और इससे सम्बंधित अपने अनुभव-संसार का दावा करें, पर 'ग्लोबल गाँव के देवता' या फिर 'गायब होता देश' में आदिवासी समाज की सरलीकृत झाँकी भर है, न कि उनकी समस्याओं की जटिलता का उद्घाटन।

बीज शब्द: आदिवासी, साहित्य, विमर्श

प्रस्तावना:

आदिवासी का अर्थ- किसी भी देश के मूल निवासियों को आदिवासी शब्द से संबोधित किया जाता है। 'आदि' का अर्थ 'आरंभ' तथा 'वासी' का अर्थ होता है 'रहने वाला' इस प्रकार आदिवासी शब्द का अर्थ हुआ किसी स्थान पर रहने वाले वहाँ के मूल निवासी। दुनिया के आदिवासी समाजों ने अपनी लड़ाइयाँ खुद ही लड़ी हैं, लेकिन मुख्यधारा के क्रांतिकारी साहित्यों ने भी उनके प्रति मानवीय संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हुए उनकी चिंताओं के चित्रण की ज़हमत नहीं उठाई। सवाल यह उठता है कि आख़िर उनकी चिन्ता किसी को क्यों नहीं है? क्यों यह समुदाय आज भी हाशिये पर की जिंदगी जीने को अभिशप्त है? साहित्य यदि बाजार के लिए नहीं है, मनुष्य और मनुष्यता के लिए है, तो हिंदी साहित्य की प्रस्तुति आदिवासी समाज के बगैर क्यों है? हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में यह प्रश्न प्रेमचंद से ज़्यादा प्रेमचंद की परंपरा का वाहकों से है कि प्रेमचंद से छूट गया आदिवासी आज भी उनकी परंपरा से क्यों बहिष्कृत है? लेकिन, इस प्रश्न का जवाब न मिलता देख पिछले दशकों के दौरान इस शून्य की भरपाई की दिशा में खुद आदिवासियों को पहल करनी पड़ी।

आदिवासी-विमर्श की पृष्ठभूमि:

समकालीन हिंदी साहित्य स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श से आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा है और हिंदी में आदिवासी विमर्श सबसे नया विमर्श है। ऐसा नहीं कि हिंदी में इससे पहले आदिवासियों के जीवन पर नहीं लिखा गया, लेकिन पिछले ढाई दशकों के दौरान उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की तेज़ होती प्रक्रिया के साथ जिस तरह से आदिवासियों के जीवन में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हस्तक्षेप को बढ़ाया और इसके कारण उनके जल, जंगल एवं जमीन से सम्बंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण शुरू हुआ, इसने आदिवासी क्षेत्रों में संघर्ष को तेज़ किया और इस संघर्ष में राजसत्ता एवं प्रशासन का हस्तक्षेप बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं कॉर्पोरेट्स के पक्ष में तथा आदिवासियों के विरुद्ध रहा। इसने आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व एवं अस्मिता के विकट प्रश्न को जन्म दिया जिसमें यदि वे अपनी सांस्कृतिक पहचान को अहमियत देते हैं, तो उनका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है और अगर वे अपने अस्तित्व को प्राथमिकता देते हैं, तो उनकी सांस्कृतिक पहचान खतरे में पड़ सकती है। ध्यातव्य है कि यूनेस्को ने भारत की जिन 196 जन-भाषाओं के अस्तित्व को खतरे में बतलाया, उनमें अधिकांश भारत की आदिवासी भाषाएँ हैं। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें आदिवासियों की अस्तित्वगत एवं अस्मितागत बेचैनी ने एक पृथक एवं स्वतंत्र धारा के रूप में आदिवासी विमर्श की संभावनाओं को बल प्रदान किया। इसके परिणामस्वरूप दलितों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए आदिवासियों की समस्याओं पर लेखन की दिशा में खुद आदिवासियों ने ही पहल की।

प्रेमचंद के साहित्य में आदिवासी:

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में आदिवासियों को जगह नहीं मिली है और न ही उनका आदिवासियों के जीवन से परिचय था, तथापि उनकी रचनाओं में दो जगहों पर आदिवासियों की चर्चा मिलती है: 'गोदान' उपन्यास में और 'सद्गति' कहानी में। गोदान में शिकार-प्रसंग में मेहता और मालती की टोली शिकार ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जंगल के एक ऐसे हिस्से में पहुँच जाती है, जहाँ उनकी

मुलाकात वन-कन्या अर्थात् आदिवासी लड़की से होती है। प्रेमचंद ने उस वन-कन्या का चित्रण करते हुए पारंपरिक सौंदर्य चेतना के आलोक में भले ही उसे कुरूप बतलाया हो, पर उसके मांसल शरीर का वर्णन करते हुए मिस्टर मेहता को उसके प्रति आकृष्ट और उसके सेवा-भाव की प्रशंसा करते हुए दिखलाया है।

गैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासी-विमर्श:

प्रेमचंद भले ही आदिवासी रचनाकार न हों, पर उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिये उस महाजनी सभ्यता के विरुद्ध आवाज़ उठाई जिनका आदिवासी जीवन एवं समाज में हस्तक्षेप आज भी बदस्तूर जारी है और जो आदिवासी दमन एवं शोषण के मूल में मौजूद है। इन महाजनों की जड़ें आदिवासी क्षेत्रों में न होकर सेमरी एवं बेलारी जैसे गाँवों में हैं और प्रेमचंद इनकी इन्हीं जड़ों पर प्रहार करते हैं। इसीलिए केदार, प्रसाद, मीना ने सही ही कहा है कि "प्रेमचंद, रेणु, संजीव और रणेंद्र आदि का साहित्य आदिवासी साहित्य न सही, पर आदिवासियों की समस्याओं पर लिखा गया महत्वपूर्ण साहित्य है।"हिंदी जगत पहले-पहल आदिवासी समाज से रूबरू हुआ रेणु के आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' में, जब उसने अपने जमीनी हक से बेदखल संथालों को अपने स्वत्व और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते देखा।

'गायब होता देश' में भी आदिवासियों के संघर्ष को एक व्यापक संघर्ष के हिस्से के रुप में देखा गया है। चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि "इसी वजह से उपन्यास आदिवासी जन-जीवन के बारे में कुछ भी ऐसा नहीं बता पाता जो खनन, भूमि-अधिग्रहण या फिर मानवाधिकारों के मुद्दे पर सक्रिय स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रकाशनों अथवा आंदोलनधर्मी अखबारों/पत्रिकाओं में ना मिलता हो।" चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि भले ही रणेंद्र आदिवासी समाज से परिचय और इससे सम्बंधित अपने अनुभव-संसार का दावा करें, पर 'ग्लोबल गाँव के देवता' या फिर 'गायब होता देश' में आदिवासी समाज की सरलीकृत झाँकी भर है, न कि उनकी समस्याओं की जटिलता का उद्घाटन।

हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श

कहानी-विधा में आदिवासी कलम का कोई चर्चित कथाकार अभी तक नहीं उभरा है, फिर भी वाल्टर भेंगरा के कहानी-संग्रह 'देने का सुख' एवं 'लौटती रेखाएँ'; आठवें दशक में पीटर पाल एक्का के प्रकाशित कहानी संग्रह 'खुला आसमान बंद दिशाएँ', 'परती जमीन' एवं 'सोन पहाड़ी'; जेम्स टोप्पो का कहानी-संग्रह 'शंख नदी भरी गेल' और मंजु ज्योत्स्ना का 'जग गयी जमीन' महत्वपूर्ण हैं। रमणिका गुप्ता के कहानी-संग्रह 'बहू जुठाई', केदारनाथ मीणा के कहानी-संग्रह 'आदिवासी कहानियाँ' और पूनम तूषामड़ के कहानी-संग्रह 'मेले में लड़की' ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। यह बात अलग है कि इन पर जितनी चर्चा होनी चाहिए थी, वो नहीं हो पाई। एलिस एक्का की कहानियाँ भी 'आदिवासी' पत्रिका के पन्नों में ही सिमटी रह गयीं। रोज केरकेट्टा ने न केवल प्रेमचंद की दस कहानियों का अपनी मातृभाषा खड़िया में अनुवाद किया, वरन् 'भँवर' जैसी मजबूत कहानी लिखी। लेकिन, इसके बाद से आज तक आदिवासी कथा-लेखकों ने अपने एकल कहानी-संग्रहों के जरिये अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने की आवश्यकता नहीं समझी, या फिर यूँ कह लें कि वे अपनी उपस्थिति दर्ज करवा पाने में असफल रहे।

दलित-विमर्श नया है, लेकिन आदिवासी विमर्श की परिपाटी काफी पुरानी है। इसकी सशक्त वाचिक परम्परा रही है और यह अब लेखन के धरातल पर उतर रही है। इसने कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है क्योंकि आज भी आदिवासी समाज का बड़ा हिस्सा अशिक्षित एवं अभावग्रस्त है तथा गरीबी एवं भुखमरी का शिकार है। आधुनिक शिक्षा एवं आधुनिक चिंतन से दूर आदिवासी समाज का यह हिस्सा अपने पारंपरिक सामूहिक मूल्यों के साथ अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जद्दोजहद कर रहा है। ऐसी स्थिति में वाचिक परंपरा के प्रति अनुकूलता के कारण कविता ही वह माध्यम है जिसके जरिये आदिवासी रचनाकार अपनी आवाज़ आदिवासी समाज के बड़े हिस्से तक पहुँचा सकते हैं।

यहाँ पर यह बात भी ध्यान में रखे जाने योग्य है कि आदिवासी समाज में आरंभ से ही कबीलाई स्वतंत्रता की भावना प्रबल रही है और इसने आदिवासियों में विद्रोह-वृति को जन्म देते हुए इन्हें लगातार उकसाया है। इसके विपरीत दलितों में विद्रोह-वृति एक नवीन प्रवृति है।

आदिवासी-विमर्श इस मायने में भी दलित-विमर्श से भिन्न है कि जिन गैर-आदिवासियों के द्वारा आदिवासियों के विषय पर लिखा जा रहा है, न तो उनका उन आदिवासियों के जीवन से परिचय है और न ही वे आदिवासियों के जीवन से परिचय के इच्छुक हैं एवं इसके लिए आदिवासियों के इलाकों में जाकर समय गुजारने के लिए बहुत तैयार दिखते हैं। इसीलिए इनका आदिवासियों के जीवन से वैसा गहरा परिचय नहीं है जो लेखन को धार देने के लिए आवश्यक है। ये बातें दलितों के विषय पर लिखने वाले गैर-दलित लेखकों के सन्दर्भ में नहीं कही जा सकती हैं। दलितों के जीवन पर लिखने वाले दलित लेखकों का दलितों के जीवन से वैसा अपरिचय नहीं है जैसा अपरिचय आदिवासियों के विषय पर लिखने वाले गैर-आदिवासी रचनाकारों का आदिवासी जीवन एवं संस्कृति से।

अंग्रेजों के साथ-साथ जमींदारों, साहूकारों और महाजनों के द्वारा उनके शारीरिक शोषण और पुरुषों के उनके प्रति अमानुषिक बर्ताव और उनके दमन, शोषण एवं उत्पीड़न की लम्बी परम्परा रही है तथा इसके विरुद्ध उन्होंने समय-समय पर आवाज़ भी बुलंद की है। इतना ही नहीं, आदिवासी समाज के सामने विस्थापन एक ऐसी समस्या के रूप में सामने आती है जो उन्हें सांस्कृतिक, मानसिक और भौगोलिक तौर पर बदलकर रख देती है और इसकी पृष्ठभूमि में आदिवासी स्त्रियाँ देह में तब्दील होकर रह जाती हैं। सभ्य समाज उसकी देह की गंध से रोमांचित हो उठता है और फिर शुरू होता है देह को खरीदने एवं बेचने का अंतहीन सिलसिला।

यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें आदिवासी साहित्य में स्त्रियों के बहुत से सवालों को महत्व मिला है। इसमें इस समाज की प्रताड़ित महिलाओं की पीड़ा एवं वेदना, उनकी अंतर्वेदना, उनकी कराह एवं चीख और मदद के लिए उनके द्वारा लगाई जा रही गुहारें पहाड़ों, जंगलों और घाटियों में बज रहे नगाड़े की तरह गूँज उठती हैं। निर्मला पुतुल की कवितायें इसकी प्रमाण हैं जिनमें आदिवासी स्त्री के जीवन का चित्रण करते हुए स्त्री-अस्मिता का सवाल उठाया गया है और आदिवासी समाज के साथ-साथ स्त्री के विविध पहलू पर भी टिप्पणी की गयी है।

आदिवासी विमर्श हिंदी की तमाम अस्मितावादी विमर्शों में अपनी भिन्न एवं विशिष्ट पहचान बनता हुआ उपस्थित होता है। जहाँ स्त्रीवादी विमर्श की परम्परा में लिखे गए साहित्य में जाति के प्रश्न की अनदेखी करते हुए सिर्फ स्त्री जाति के हकों और अधिकारों की बात की गयी है और दलितों, आदिवासियों और मुस्लिम स्त्रियों के प्रश्नों से आँखें चुराई गयी है, वहीं दलित-साहित्य भी स्त्री के सवालों से नज़रें चुराता दिखाई पड़ता है जिसके कारण दलित-स्त्री विमर्श का आधार तैयार होता है। लेकिन, इन दोनों से भिन्न आदिवासी साहित्य स्त्री के प्रश्न को बड़ी बखूबी से उठता है। यही कारण है कि इसमें स्त्रियाँ बड़ी तादाद में मौजूद हैं, पुरुषों के कंधे से अपना कंधा मिलाते हुए, ठीक आदिवासी समाज की तरह।

निष्कर्ष:

आदिवासी समाज सदियों से जातिगत भेदों,वर्ण व्यवस्था, विदेशी आक्रमणों, अंग्रजों और वर्तमान में सभ्य कहे जाने वाले समाज द्वारा दूर-दराज जंगलों और पहाड़ों में खदेड़ा गया है।अज्ञानता और पिछड़ेपन के कारण उन्हें सताया गया है। अक्षरज्ञान न होने के कारण यह समाज सदियों से मुख्यधारा से कटा रहा, दूरी बनाता रहा। उनकी लोककला और उनका साहित्य सदियों से मौखिक रूप में रहा हैं और इसका कारण रहा उनकी भाषा के अनुरूप लिपि का विकसित न हो पाना। यही कारण साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकार और उनका साहित्य गैर-आदिवासी साहित्य की तुलना में कम मिलता है।आज भले ही आदिवासियों की रचनाओं में एक प्रकार की अनगढ़ता एवं खुरदरापन दिखे और कलात्मक बारीकियों के आलोक में उनका मूल्यांकन पाठकों एवं आलोचकों को निराश करता हो, पर इसका महत्व इस बात में है कि इसने मुख्यधारा के द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत आदिवासी समाज एवं उनके जीवन से व्यापक समाज को परिचित करवाने की कोशिश की।

संदर्भ-सूची:

1. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी: डॉ. रमणिका गुप्ता
2. आदिवासी साहित्य विमर्श : चुनौतियाँ और संभावनाएँ: गंगा सहाय मीना
3. प्रेमचंद साहित्य में आदिवासी: गंगा सहाय मीना
4. शुक्ल विनोदकुमार वाणी प्रकाशन, दिल्ली